ISSN: 2319 – 8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

Vol. 2, Issue 9, September 2013

वैदिक काल में महिलाओं की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति : एक मूल्यांकन

Dr. Sucheta Gupta

Lecturer, Department of Political Science, Government College Bibirani, (Alwar) Rajasthan, India

शोध सार (Abstract):

वैदिक और उत्तर वैदिक काल भारतीय इतिहास के वे महत्वपूर्ण चरण हैं जिनमें समाज, धर्म, शिक्षा और अर्थव्यवस्था की आधारभूत संरचना विकसित हुई। इस काल में महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। ऋग्वैदिक (प्रारंभिक वैदिक) काल में महिलाओं की स्थिति अत्यंत सम्मानजनक एवं स्वतंत्र थी। वे धार्मिक अनुष्ठानों, यज्ञों तथा वेदाध्ययन में समान रूप से सहभागी होती थीं। गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा जैसी विदुषी नारियाँ समाज में विद्या और तर्कशक्ति के लिए प्रसिद्ध थीं। विवाह संस्था में समानता का भाव था, कन्याओं को वर चयन का अधिकार प्राप्त था, तथा शिक्षा प्राप्ति में कोई लैंगिक भेदभाव नहीं था।

आर्थिक दृष्टि से महिलाएँ परिवार की उत्पादन प्रक्रिया में सहभागी थीं। वे कृषि, पशुपालन, वस्त्र निर्माण और व्यापार में योगदान देती थीं। गृहस्थी की व्यवस्था और संसाधनों का प्रबंधन भी महिलाएँ करती थीं। इस युग में नारी को 'गृहलक्ष्मी' एवं 'धर्मपत्नी' के रूप में सम्मानित किया गया।

उत्तर वैदिक काल में, सामाजिक संरचना में पितृसत्तात्मक प्रवृत्तियाँ प्रबल हुईं। शिक्षा और धार्मिक क्रियाओं से स्त्रियों को धीरे-धीरे वंचित किया जाने लगा। बाल-विवाह, सती प्रथा और स्त्रियों की शिक्षा पर नियंत्रण जैसे प्रतिबंध लागू हुए। उनका जीवन गृहस्थी तक सीमित हो गया और वे पुरुष-निर्भर बनती चली गईं। आर्थिक रूप से भी उनका योगदान गौण माना जाने लगा। अतः वैदिक काल नारी सम्मान और स्वतंत्रता का प्रतीक था, जबकि उत्तर वैदिक काल में सामाजिक व आर्थिक असमानता का दौर प्रारंभ हुआ। इन दोनों कालों की तुलना भारतीय समाज में नारी की स्थिति के क्रमिक अवनयन को स्पष्ट रूप से दर्शाती है।

मुख्य शब्द : वैदिक काल, उत्तर वैदिक काल, नारी-सशक्तिकरण, सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, गार्गी, मैत्रेयी, पितृसत्ता, शिक्षा, धर्म, विवाह।

प्रस्तावना

वैदिक युग सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से स्त्रियों की चर्मोन्नति का काल था उसकी प्रतिभा तपस्या और विद्वता सभी विकासोन्मुख होने के साथ ही पुरूषों को परास्त करने वाली थी। उस समय स्त्रियों की स्थिति उनके आत्म-विश्वास, शिक्षा, सम्पत्ति आदि पुरुषों के समान थी । यज्ञों में भी उसे सर्वाधिकार प्राप्त था । वैदिक युग में स्त्रियों की गतिशीलता पर कोई रोक नहीं थी औन न ही मेल-मिलाप पर उस युग में मैत्रेय, गार्गी और अनुसूईया नामक विदुषी स्त्रियाँ शास्त्रार्थ में पारंगत थी। "यज्ञ नार्यस्तु पुज्यते रमन्ते तत्र देवता " उक्ति वैदिक काल के लिए सत्य उक्ति थी। महाभारत के कथानुसार वह घर घर नहीं जिस घर में सुसंस्कृत. सुशिक्षित पत्नी न हो। गृहणी विहिन घर जंगल के समान माना जाता था और उसे पति के तरह ही समानाधिकार प्राप्त थे। वैदिक युग भारतीय समाज में स्त्रियों के लिए स्वर्णीम युग था। यह वह युग था जिसमें स्त्रियाँ खुलकर अपनी जीवन व्यतीत कर सकती थी. अपनी जीवन संवार सकती थी। सही मायने में वैदिक युग स्त्रियों को अपनी जीवन जीने का अधिकार प्रदान किया था।

वैदिक युग में स्त्रियों की जो स्थिति थी, वह उत्तर वैदिक युग में कायम न रह सकी। उसकी शक्ति, प्रतिभा व स्वतंत्रता के विकास पर प्रतिबंध लगने लगा। धर्म सूत्र में बाल विवाह का निर्देशित दिया गया जिससे स्त्रियों की

शिक्षा में बाधा पहुँची और उनकी स्वतंत्रता को तथाकथित ज्ञानियों ने ऐसा कहकर सीमित कर दिया कि "पिता रक्षित कौमारे भर्त्ता रक्षित यौवने । पुत्रक्ष स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातंत्रयमर्हति ।" वह घर की चहारदिवारी में कैद हो गई, पढ़ने-लिखने व वेदों का ज्ञान असम्भव हो गया और उनके लिए धार्मिक संस्कार में भाग लेने का अधिकार से मनाही हो गई। वहुपत्नी प्रथा का प्रचलन हो गया और वैकि युग की तुलना में उत्तर व दीर्घ काल में उनकी स्थिति निम्न स्तर की हो गई। इस प्रकार प्रस्तुत शोध आलेख में वैदिक काल में महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को विस्तृत रूप से उल्लेखित किया गया है।

वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति

वैदिक साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि आर्यों का सामाजिक जीवन काफी सुव्यवस्थित था। परिवार में पुरूष की प्रध जानता होते हुए भी वैदिककालीन भारतीय समाज में स्त्रियों को सम्मानित स्थान प्राप्त था। स्त्री व पुरुष को समाज में बराबर का दर्जा प्राप्त था। दोनों की समाजिक परिस्थिति समान थी। प्रत्येक सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में स्त्रियों की उपस्थिति अनिवार्य थी। स्त्री को पुरुष की सहधर्मिणी माना जाता था और यह समझा जाता था कि स्त्री के बिना पुरुष का कोई यज्ञ व धार्मिक कृत्य पूरा नहीं हो सकता था।

संतोनात्पादन संतान का पालन-पोषण, अतिथियों तथा मित्रों का सत्कार, लोक व्यवहार का पालन घर के बड़े बुजुगों की सेवा. धार्मिक कृत्य स्त्रियों के द्वारा किये जाते थे। मनु नारी को कोई अनिच्छित बोझ नहीं समझते, अपितु मनुष्य की सांसारिक एवं आध्यात्मिक अभिलाषाओं की पूर्ति का मुख्य साधन मानते थे।

स्त्रियां सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में पुरूषों का हाथ बंटाती थी। वैदिक काल में पुत्री के जन्म पर भी परिवार में पुत्र क जन्म के समान ही प्रसन्नता का वातावरण होता था। हालांकि प्रत्येक काल में पुत्र का जन्म अधिक वांछनीय रहा है। कन्या को पुत्र से निम्न किन्तु दत्तक पुत्र से श्रेष्ठ माना जाता था । वैदिक समाज में पुत्रों के समान ही पुत्रियों की भी शिक्षा-दीक्षा की पूरी देख-रेख की जाती थी । शिक्षा प्राप्ति के लिए गुरूकुल जाना पड़ता था, ब्रह्माचर्य का पालन करना पड़ता था। कन्या ब्रह्मचर्य का पालन करती थी, आश्रम में शिक्षा प्राप्त करती थी, सह-शिक्षा का प्रचलन था। प्राचीन भारत में शिक्षा से तात्पर्य वैदिक शिक्षा से था। कन्याएं भी बालको की भांति यज्ञ करती थी। यज्ञ करने एवं वैदिक प्रार्थनाओं को करने का अधिकार कंवल उसी व्यक्ति को प्राप्त था जिसका उपनयन संस्कार किया गया हो। यजुर्वेद के अनुसार बालिकाओं का भी उपनयन संस्कार किया जाता था । कन्याएँ विस्तृत ज्ञानराशि प्राप्त कर सकती थी। वे बुद्धि एवं शिक्षा में अग्रणी थी। वशिष्ट सूत्र के अनुसार उपाध्याय की तुलना में आचार्य दस गुना प्रतिष्ठित है, आचार्य से सौ गुना प्रतिष्ठित पिता है और पिता से सहस्त्र गुना प्रतिष्ठित पद माता का है, माता के पद की यह प्रतिष्ठा प्राचीन भारत में स्त्रियों की उच्च स्थिति का स्पष्ट प्रमाण है। इस काल में गार्गी, मैत्रयी आदि के नाम अविस्मरणीय है। ये वाद-विवाद तर्क शास्त्र में पारंगत थी। रोमशा, उर्वशी, घोषा विश्ववारा, लोपामुद्रा आदि परम् विदुषी स्त्रियां हुई, उन्होनें वैदिक ऋचाओं की रचना की। कन्याएँ उच्च शिक्षा प्राप्त करती थीं. एक स्थान पर तो विदुषि पुत्री ही कामना करने वाले पिता की चर्चा की गई है। सोलह वर्ष की अवस्था तक कन्याएँ अविवाहित रहती थी। लड़कियों का विवाह युवावस्था में होता था। वे अपना जीवन साथी चुनने के लिए स्वतंत्र थी। स्त्रियों चाहती तो अपना जीवन बिना विवाह के भी व्यतीत कर सकती थी । पूर्ण युवती होकर स्वयंवर द्वारा अपने पति का वरण करती थी और अपने परिवार में 'साम्राश्री' बनकर रहती थी। उन्हें पुरूष की सहधर्मिणी एवं अर्धागिनी तथा गृहस्वामिनी माना जाता था। जहां पर स्त्रियों का सम्मान होता है वहां देवताओं का निवास होता है। इसका प्रमाण हमें वेदों के अनेक मंत्रों से मिलता है। वेद के एक मंत्र के अनुसार वधु अपने श्वसुर सास, ननद, देवर आदि पर साम्राज्ञी के रूप में शासन करती थी।

इस प्रकार हम देखते है कि प्राचीन भारत में नारी का विशेष महत्व था. वह स्वयं लक्ष्मी है, जिस कुल में उसे दुःख मिलता है वह कुल शीघ्र नष्ट हो जाता है। इसके विपरीत जिस कुल में वह दुःख रहित होती है उस कुल का संवर्धन (विकास) होता है। कामसूत्र में स्त्री को पुष्प की उपमा दी गयी है।

उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति

वैदिक काल में महिलाओं का समाज में जो उच्च स्थान प्राप्त था वह उत्तर वैदिक काल में कुछ कम हो गया था। उनकी स्थिति में भेदपरक विकस आरम्भ हुआ। उत्तर वैदिक काल में कर्मकाण्डों में जटिलता आ जाने के फलस्वरूप यज्ञ कार्यों में आडम्बर आ गये थे जिसके कारण स्त्रियों की धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक स्थितियों पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगने लगे। सम्भवतः स्त्रियों के 'कानूनी' व्यावहारिक अधिकार सीमित थे। उन्हें चल और अचल सम्पत्ति की स्वामिनी होने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। उनके द्वारा थोड़ा बहुत जो कुछ अर्जन होता था वह उसके पिता, पति या पुत्र को मिलता था। महाभारत के अनुशासन पर्व में भीष्म पितामह के अनुसार, 'यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता (जहां नारियों को पूजा जाता है वहां देवता निवास करते हैं) उनकी यह धारणा उत्तर वैदिक काल में व्यावहारिक नहीं लग रही थी।

उत्तर वैदिक हिन्दू समाज में पुत्री होने पर पुत्र के समान स्वागत नहीं किया जाता था, क्योंकि वह धार्मिक कार्यों के उपयुक्त नहीं थी। स्त्रियों को वेद पढ़ने व मंत्रोच्चारण के उपयुक्त नहीं समझा गया था। पुत्र का स्थान समाज में निःसन्देह उच्च था। परन्तु पुत्री भी उतने ही सम्मान से देखी जाती थी। पुत्री माता-पिता के लिए चिन्ता का कारण अवश्य होती थी परन्तु वह भी पुत्र के समान ही स्नेह प्राप्त करती थी। स्त्रियों के ज्ञानार्जन में कोई रुकावट नहीं थी। अनेक नारियों व्यक्तिगत रूप से बौद्धिक वृत्ति में काफी ऊँचा उठ जाती थी। स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का पूरा अधिकार था। कन्याओं को समुचित विद्या प्रदान की जाती थी। उत्तर वैदिक काल में लोग विदुषी कन्या की प्राप्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना तक करते थे । विदुषी कन्या के माता-पिता कहलाना गौरव का विषय था। विवाह संस्कार के समय वर एवं वधु सम्मिलित रूप से अनुवाक मंत्रों का उच्चारण करते थे। इससे स्पष्ट होता है कि कन्या की शिक्षा किसी भी प्रकार से पुत्रों से कम नहीं होती थी। अधिकांश कन्याएं शिक्षा प्राप्त करके गहस्थ आश्रम में प्रवेश करती थी। विवाह कन्यायाओं का परम आवयश्यक संस्कार माना जाता था। माता-पिता के लिए पुत्री का विवाह महान दायित्व माना जाता था। प्रारंभिक उत्तर वैदिक काल में कन्या का विवाह युवावस्था में होती थी। इस समय विवाह की आयु 16 वर्ष के आस-पास रही होगी। रजस्वला होने के बाद कन्याएं तीन वर्ष तक कुंवारी रखी जा सकती थी। इसके अतिरिक्त विष्णु एवं गौतम धर्म सूत्रों में ऋनुमति कन्या को केवल तेन मास तक विवाह हेतु प्रतिक्षा करने की अनुमति दी गयी। बौद्धायन के मतानुसार यदि वयस्क कन्या का पिता कन्या के ऋतुति होने के पश्चात् तीन वर्ष में कन्या का पति न खोज सके तो कन्या को स्वयं अपना पति चुनने का अधिकार था। मनु ने यह सलाह दी कि ऋतुमति होने से पूर्व कन्या का विवाह कर देना चाहिए। वहीं दूसरी ओर मनु ने यह भी सुविधा प्रदान की कि यदि किसी पिता को अपनी पुत्री के लिए उपयुक्त वर प्राप्त नहीं होीत है तो वह अपनी पुत्री को अपने घर में आजीवन अविवाहित रख सकता है। डॉ. पी.वो. काणे का विचार है कि इस परिवर्तन का कारण स्पष्ट नहीं है लेकिन संभव है कि इस समय बौद्धधर्म का प्रचार हो रहा था कन्याओं में भिक्षुणी बनने की प्रवृत्ति बढ़ रही थी । सम्भवतः इस प्रवृति को रोकने के लिए कन्याओं का विवाह कम आयु में किया जाने लगा। अधिकांश विवाह युवा अवस्था में होते थे किन्तु बाल विवाह के उदाहरण भी मिलते है। विवाह में दहेज प्रथा को स्थाना नहीं दिया जाता था। किन्तु सम्पन्न परिवारों में कुछ धन वर को विवाह के अवसर पर दिया जाता था। धनी परिवार की पुत्री अपने साथ दहेज में सौ-सौ गायें लाती थी। कन्या को विवाह के समय उपयुक्त आभूषण दिये जाते थे, अर्थात् पिता अपने सामर्थ्य के अनुसार वधु को वस्तुऐं भेंट देता था। विवाहित जीवन में पत्नी को कुलभूषण मानकार परिवार में उसे श्रेष्ठ स्थान दिया गया था। पारसकर गृहसूत्र के अनुसार विवाह के बाद पति-पत्नी आध्यात्मिक दृष्टिकोण से एक इकाई बन जाते थे। विवाह का उद्देश्य केवल संतानोत्पत्ति ही नहीं थी. पति-पत्नी जीवन के प्रत्येक कार्य में एक दूसरे को पूर्ण सहयोग देते थे। सामान्यतः एक प्ली रखने की परम्परा थी। परन्तु ऐसा अनुमान है कि उत्तर वैदिक काल में राजा, ऋषि तथा सम्पन्न लोग एक से अधिक पत्नियां भी रखते थे। उत्तर वैदिक काल में पुरुष बहुविवाह करते थे, जैसे-र कात्यायनी नानक दो पत्नियां थो - याज्ञवल्क्य ऋषि के मैत्रेयी तथा उत्तर वैदिक कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति प्रत्येक क्षेत्र में सामान्य थी। स्त्रियां धार्मिक, सामाजिक एवं शैक्षिक क्षेत्र में आशिक स्वतंत्रता का भोग करती थी। परन्तु आर्थिक क्षेत्र में भी उन्हें सीमित अधिकार ही प्राप्त थे। सुत्रकारों ने यद्यपि सम्पत्ति पर पति का संयुकन अधिकार स्वीकार किया है, परन्तु धन के व्यय करने में प्राथमिकता व प्रमुखता पति को ही प्राप्त थी। पति की अनुपस्थिति में पत्ने कुछ धन अवश्य व्यय कर सकनी थी। यदि पति दूसरा विवाह करता था तो पूर्व पत्नी के भरण-पोषण का दायित्व पति पर ही होता था। पत्नी का वास्तविक अधिकार स्त्रीधन अथवा दहेज में प्राप्त कुछ धन पर ही होता था।

महिलाओं की आर्थिक स्थिति
वैदिक काल में प्राय: ये स्त्रियां घर के पुरूषों का उनके काम में सहयोग करती थी। जबकि बढ़ई, दर्जी, लुहार, कुम्हार आदि को स्त्रियों अपने पति के काम में इतनी निपुण हो जाती थी कि आवश्यकता पड़ने पर बिना पुरूषों की सहायता के भी वे अपना काम चला लेती थी। स्वयं मनु ने कहा है कि यदि पति जीवन निर्वाह का प्रबन्ध किये बिना विदेश चला जाए तो स्त्री सीना, पिरोना आदि शिल्पों से अपना जीवन निवाह कर सकती थी। वैदिक युग से ही नारी का विशेष झुकाव गृह उद्योगों एवं चरखे पर सूत कातना तथा वस्त्र बनने की तरफ था। प्राचीन काल से ही स्त्रियां चरखे पर सूत कातने एवं वस्त्र बुनने के काम में विशेष दक्ष होती थी। संघात घरानों की महिलायें भी चरखा चलाती थी। भले ही इसके द्वारा अर्थोपार्जन न करती हो। लेकिन निम्न वर्ग की स्त्रियों के लिए चरखा आर्थिक दृष्टि से अपने आपको मजबूती प्रदान करने का साधन था।

भारत वर्ष में चरखा प्रचीनतम काल से ही गृह उद्योगों का मुख्य आधार रहा है "सातवलेकर" ने अपनी पुस्तक वेदों में चरखा' में अनेक उदाहरणों द्वारा यह प्रतिपादित किया है कि चरखे से वैदिक नारियां सूत कातती थी। करघे पर वस्त्र बुनती थी और उन वस्त्रों पर अत्यन्त सुन्दर कशीदाकारी करती थी। वैदिक पत्नी दूध और हवन से इन्द्र की पूजा करती थी और अति उत्तम सूत कातती थथे प्राचीन काल में स्त्री व पुरुष दोनों मिलकर सूत कातते थे। यदि कोई पुरूष अपने कार्य को बीच में छोड़कर चला जाता था तो स्त्री उसे पूरा कर लेती थी। उस काल में सूत कातना एक उद्योग होता था। वैदिक युग में सूत कातना और उससे वस्त्र बुनना आर्थिक महत्व का कार्य था। वैदिक एवं वैदिकोत्तर काल में सूत और ऊन के वस्त्रे के उत्पादन में स्त्रियां अलग-अलग या पुरूषों के साथ मिलकर सादे तथा रंगीन वस्त्र तैयार करती थी वे अपने इस उद्योग से पारिवारिक अर्थव्यवस्था एवं स्वयं की आर्थिक स्थिति को मजबूत करती थी। वैदिक काल में स्थापित यह कुटीर उद्योग मौर्य काल में भी निर्वाध चलता रहा। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में ऐसी विधवाओं,परित्यक्ताओं एवं अंगहीन स्त्रियों का वर्णन किया है जो घर पर ही सूत कातती थी. राजा की आर से दासियां इनके घर पर ही कपास भिजवा दिया गरती थी। इन महिलाओं को राज्य की ओर से पैसे दिये जाते थे। मेधातिथि में कहा गया है कि जिस स्त्री का पति मर गया हो, जिसकी कोई सन्तान न हो और पति ने कोई सम्पत्ति भी न छोड़ी हो ता उस स्त्री को सूत इत्यादि कातकर अपना जीवनयापन करना चाहिए।

कात्यायन के अनुसार महिलाएं, कृषि, पशुपालन, घी निकालने, सूत कातने, मसालों और धान की कटाई, कुटाई करने, पशु-पक्षियों की देखभाल करने, सब्जी आदि पैदा करने के कार्य करती थी।

प्राचीन काल में दास-दासी रखने का भी प्रचलन बहुत अधिक था। दासियों की स्थिति उनके स्वामी के व्यवहार पर निर्भर करती थी । दासियों के साथ महिला कर्मकार भी राजा अथवा निजी स्वामियों के अधीन कताई, बुनाई या अन्य निर्माण कार्यों में लगाई जाती थी। अनेक महिला श्रमिक धनिकों एंव व्यापारियों के घर काम करती थी, जिसके बदले उन्हें मजदूरी एवं भोजन वस्त्र की सुविध मिलती थी।

महिला श्रमिकों को अनाज, दूध व अन्य उत्पादन भी दिया जाता था। उनका वेतन उनके निर्वाह योग्य होता था । प्रायः महिला श्रमिकों से भारी कार्य नहीं लिया जाता था। इन कार्यों के अलावा महिलाऐं पानी भरने का कार्य करती थी । प्रायः दूर से घड़े भरकर लाती थी। चावल कूटना, आटा पीसना, मसाले पीसना, खाना बनाना, घर की सफाई करना, दीप जलाना, गाय दूहना व अन्य घरेलू कार्य भी महिलाएं स्वयं करती थी । सामन्त व उच्च वर्ग के लोग यह कार्य दासियों से करवाते थे जिसके बदले में दासियों को वस्त्र, भोजन, आभूषण देते थे।

उद्योगों के क्षेत्र में भी नारी को व्यापार एवं वाणिज्य में भी अपनी योग्यता दिखाने का अवसर प्राप्त था। याज्ञवल्क्य एवं विष्णु स्मृतियां दर्शाती है कि वाणिज्य एवं उद्योग में निम्नवर्ग की स्त्रियों को अपने परिवार के व्यापारिक कार्यों में क्रियात्मक भागीदारी थी. पति की अनुपस्थिति में वे पति के स्थान पर ऋण अग्रिम लेती थीं तथा उद्योग धंधों से संबंधित बातचीत भी करती थी।

उद्धरण दर्शाते है कि सार्थवाह पुषणक और उनकी पत्नी शिवदत्त व्यापार में अलग-अलग व्यस्त थे। कुद अभिलेख की शिवदत्त भी सार्थवाहिनी (व्यापारिक कारवा की प्रधान) थी जो अपने कारवां का नेतृत्व कर रही थी। स्त्रियां केवल वस्तुओं के उत्पादन, दुलाई और वितरण तथा विक्रय में ही भाग नहीं लेती थी वरन व्यापार से संबंधित छोटे कार्यों में भी भाग लेती थी। कभी-कभी वे भारवाहक जैसे कठिन कार्य भी करती थी। भारवाकों की सेवाओं की आवश्ययकता मुख्यतः बंदरगाहों में ही होती थी। आधुनिक युग में यह है कार्य मुख्यतः पुरूषों द्वारा ही किया जाता है किन्तु प्राचीन काल में बंदरगाहों में स्वी भारवाहिकाओं की नियुक्ति होती थी। आठवीं शताब्दी के शासक भोग शक्ति के अजनेरी ताम्रपत्र में स्त्री भारवाहिका' के लिए "भारिका" शब्द का प्रयोग हुआ है उनकी नियुक्ति सामान उतारने चढ़ाने हेतु चंद्रपुरी और सामगिरी पट्टन के बंदरगाहों पर की गई थी।
इससे हमें ज्ञात होता है कि स्त्रियां किसी हद तक वाणिज्य व्यापार में सहयोग कर रही थी। शुद्रक के "मृच्छकटिकम् " नामक नाटक में स्त्रियों द्वारा जहाज व्यापार के अप्रत्यक्ष संकेत मिलते है। जिसमें चारूदत्ता वसंत सेना के वैभव को देखकर प्रश्न करता है। कि वह किसी जहाज कम्पनी की मालिक है।
इससे हमें ज्ञात होता है कि व्यापार वाणिज्य के क्षेत्र में स्त्रियां पुरूषों की संख्या भले ही कम रही हो किन्तु तत्कालीन आर्थिक क्रियाकलापों में स्त्रियां पुरूषों के समकक्ष जिम्मेदारियों का निर्वहन करने में सक्षम थी और सभी वर्गों की महिलाओं की आर्थिक स्थिति उन्नत थी।

निष्कर्ष

ऋग्वैदिक समाज में स्त्रियों को सम्मान दिया जाता था। किन्तु वे सम्पति की उत्तराधिकारिणी नहीं होती थी। कन्या पत्नी तथा माता के रूप में नारी की काफी प्रतिष्ठा थी। स्त्रियों को अनेक स्वतंत्रताएं प्राप्त थी। पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था। कन्या के लालन-पालन का भार परिवार पर रहता था। कन्या के रूप में नारी को उच्चतम शिक्षा पाने का अधिकार था। पत्नी के रूप में नारी गृहस्वामिनी कहलाती थी और उसके धार्मिक और सामाजिक अधिकार पति के समान थे। वह घर के कामकाज में हिस्सा लेती थी ।

स्त्रियां स्वतंत्र रूप से बाहर आ जा सकती थी तथा यज्ञों और उत्सवों में भाग लेती थी। कुमारी लड़कियों का भरण-पोषण परिवार करता था। स्त्रियों की शिक्षा पर भी ध्यान दिया जाता था। इस युग में घोषा लोपामुद्रा, विश्ववारा जैसी नारियां ऋषिपद पा चुकी थी। बहुत सी स्त्रियों ने मंत्रों की रचना भी की थी। इस प्रकार ऋग्वैदिक समाज में नारियों को विकास के लिए पूर्ण अवसर मिलता था।

ऋग्वैदिक काल में विवाह एक पवित्र सामाजिक संस्कार के रूप में स्वीकृत हो चुका था। 16-17 वर्ष की आयु में कन्या का विवाह होता था । जीवन साथी चुनने का पर्याप्त अवसर मिलता था। वर-कन्या यज्ञों, मेलों तथा उत्सवों के अवसर पर जीवन साथी का चुनाव करते थे। वर-कन्या के परस्पर चुनाव के बाद अभिभावक की स्वीकृति ली जाती थी । विवाह संस्कार बड़ी धूम-धाम और विधि-विधान के अनुसार होता था । दहेज की प्रथा नहीं थी, लेकिन कन्या की विदाई के समय उपहार एवं द्रव्य दिये जाते थे।

ऋग्वैदिक समाज में साधारणतया एकविवाह की प्रथा प्रचलित थी, लेकिन बहुविवाह के भी उदाहरण मिलते है। सम्भवतः बहुपत्नी प्रथा समाज के धनी लोगों और राजाओं तक सीमित थी। बहुपतित्व के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं। आय और दासों के बीच विवाह नहीं होता था। भाई-बहन के बीच विवाह वर्जित था। विवाह के बाद पत्नी पति के संरक्षण में रहती थी। ऋग्वैदिक समाज में विधवा-विवाह और नियोग प्रथा भी प्रचलित थी। बाल-विवाह जैसी दूषित प्रथा उस समय नहीं था ।

उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की दशा पहले से खराब हो गयी थी। उनका कानूनी अधिकार सीमित था। वे चल अथवा अचल सम्पत्ति की स्वामिनी नहीं हो सकती थी। इस समय धनी वर्ग तथा राजाओं के बीच एक से अधिक विवाह करने की प्रथा चल पड़ी थी। इससे भी स्त्रियों के अधिकार सीमित हो गये थे। स्त्रियों की अर्जित सम्पत्ति पर पिता या पति का अधिकार रहता था। बहुविवाह के कारण अनेक स्त्रियों का जीवन कष्टमय हो जाता था। स्त्री एवं पुरूष की समानता की भावना समाप्त हो रही थी। परिवार में पिता की प्रधानता बढ़ गयी थी। उनके अधिकार असीमित थे और वह अपने पुत्र को उत्तराधिकार से वंचित रख सकता था। राजपरिवारों में ज्येष्ठाधिकार

को अधिक महत्व दिया जाता था। पूर्व पुरुषों की पूजा होती थी। नारियों को सामान्यतः निम्न दर्जा दिया जाता था। मैत्रायणी संहिता में नारी को पासा और सूरा के साथ-साथ तीन प्रमुख बुराईयों में गिनाया गया ।

उत्तर वैदिक काल में पुत्री की अपेक्षा पुत्र की अधिक कामना रहती थी। कन्या का जन्म अभाग्य का लक्षण समझा जाता था। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि पुत्री ही सभी दुखों का स्रोत और पुत्र ही परिवार का रक्षक है। उत्तर वैदिक काल में बाल-विवाह का उदाहरण नहीं मिलता है। अथर्ववेद से पता चलता है कि कन्याएं आजीवन अविवाहित भी रहती थी। लेकिन विवाह सामान्यतः अनिवार्य था क्योंकि अविवाहित पुरूष को यज्ञ का अधिकार नहीं था। बिना स्त्री के पुरूष स्वर्गगामी नहीं हो सकता था। बिना नारी का पुरुष अपूर्ण समझा जाता था।

उत्तर वैदिक समाज में पुरूष को बहुविवाह का अधिकार था, पर नारी के एक से अधिक पति नहीं हो सकते थे। याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थी। ऐतरेय ब्राह्मण में हरिशचन्द्र की एक सौ पत्नियों का उल्लेख है। पर, बहुविवाह की प्रथा धनी वर्ग और राजकीय वर्ग तक ही सीमित थी। साधारण स्तर के व्यक्ति एक ही विवाह करते थे। तैत्तिरीय संहिता से पता चलता है कि स्त्री एक ही पति रखती थी। माताओं के नाम पर रखे गये पुत्रों के नाम पिता की बहुसंख्यकता सिद्ध न करके माता की विद्वता एवं सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रतीत थे।

उत्तर वैदिक काल में सहपतिकता का उदाहरण नहीं मिलता है, पर तैत्तिरीय संहिता से पता चलता है कि विधवा को पुनर्विवाह का अधिकार था। इस युग के साहित्य में सजातीय विवाह और अन्तरजातीय विवाह के उदाहरण मिलते है। तैत्तरीय संहिता में आर्य- पुरूष और शूद्र नारी के विवाह का उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में ऋषि च्यवन और राजा शर्याति की पुत्री सुकन्या के विवाह का उल्लेख आया है। समाज में पर्दा प्रथा नहीं थी। फिर भी यह कहा जा सकता है कि उत्तर वैदिक काल में महिलाओं पर ऋग्वैदिक काल के अपेक्षा कुछ पाबंदिया लगा दी गई थी।

संदर्भ

1. डॉ. अल्तेकर- पोशीशन ऑफ वुमेन इन हिन्दू सिविलाइजेष्ठान, हिन्दू विश्वविद्यालय, कल्चर प्रकाशन, बनारस, 1938
2. डॉ. गजानन शर्मा प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, रचना प्रकाशन इलाहाबाद, 1971
3. डॉ. वनमाला भवालकर- महाभारत काल में नारी अभिनव साहित्य प्रकाशन सागर 1964
4. भगवत शरण उपामयाय, प्राचीन भारत का इतिहास
5. डॉ. ए. एस. अल्लेकर, पोजिशन ऑफ वुमेन इन एनसिमेंट इण्डिया
6. डॉ. शशि अवस्थी, प्राचीन भारतीय समाज
7. डॉ. पी. वी. कांणे, धर्म शास्त्र का इतिहास भाग-2
8 सत्यकंतु विद्या अलकाल, प्राचीन भारत का धार्मिक-सामाजिक एवं आर्थिक जीवन
9. ओम प्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, पंचम संस्करण
10. बी. एन. शर्मा, सोशल लाईफ इन नोर्दन इण्डिया
11. रजनीकांत शर्मा, अलबेरूनी का भारत तृतीय भाग
12. डॉ. चन्द्रबली त्रिपाठी भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास
13. राधाकृष्ण चौधरी, प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास